1055CH13

13
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म सन् 1927 में ज़िला बस्ती, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हुई। वे अध्यापक, आकाशवाणी में सहायक प्रोड्यूसर, **दिनमान** में उपसंपादक और **पराग** के संपादक रहे। सन् 1983 में उनका आकस्मिक निधन हो गया।

सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार और नाटककार थे। सर्वेश्वर की प्रमुख कृतियाँ हैं—**काठ की घंटियाँ**, **कुआनो नदी**, **जंगल का दर्द**, **खूँटियों पर टँगे लोग** (कविता-संग्रह); **पागल कुत्तों का मसीहा**, **सोया हुआ जल** (उपन्यास); **लड़ाई** (कहानी-संग्रह); **बकरी** (नाटक); **भौं भौं खौं खौं**, **बतूता का जूता**, **लाख की नाक** (बाल साहित्य)। **चरचे और चरखे** उनके लेखों का संग्रह है। **खूँटियों पर टँगे लोग** पर उन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला।

सर्वेश्वर की पहचान मध्यवर्गीय आकांक्षाओं के लेखक के रूप में की जाती है। मध्यवर्गीय जीवन की महत्वाकांक्षाओं, सपनों, संघर्ष, शोषण, हताशा और कुंठा का चित्रण उनके साहित्य में मिलता है। सर्वेश्वर जी स्तंभकार थे और **चरचे और चरखे** नाम से दिनमान में जो स्तंभ लिखते थे उसमें बेबाक सच कहने का साहस दिखता है। उनकी अभिव्यक्ति में सहजता और स्वाभाविकता है।

संस्मरण स्मृतियों से बनता है और स्मृतियों की विश्वसनीयता उसे महत्त्वपूर्ण बनाती है। फ़ादर कामिल बुल्के पर लिखा सर्वेश्वर का यह संस्मरण इस कसौटी पर खरा उतरता है। अपने को भारतीय कहने वाले फ़ादर बुल्के जन्मे तो बेल्जियम (यूरोप) के रैम्सचैपल शहर में जो गिरजों, पादरियों, धर्मगुरुओं और संतों की भूमि कही जाती है परंतु उन्होंने अपनी कर्मभूमि बनाया भारत को। फ़ादर बुल्के एक संन्यासी थे परंतु पारंपरिक अर्थ में नहीं। सर्वेश्वर का फ़ादर बुल्के से अंतरंग संबंध था जिसकी झलक हमें इस संस्मरण में मिलती है। लेखक का मानना है कि जब तक रामकथा है, इस विदेशी भारतीय साधु को याद किया जाएगा तथा उन्हें हिंदी भाषा और बोलियों के अगाध प्रेम का उदाहरण माना जाएगा।

मानवीय करुणा की दिव्य चमक

फ़ादर को ज़हरबाद से नहीं मरना चाहिए था। जिसकी रगों में दूसरों के लिए मिठास भरे अमृत के अतिरिक्त और कुछ नहीं था उसके लिए इस ज़हर का विधान क्यों हो? यह सवाल किस ईश्वर से पूछें? प्रभु की आस्था ही जिसका अस्तित्व था। वह देह की इस यातना की परीक्षा उम्र की आखिरी देहरी पर क्यों दे? एक लंबी, पादरी के सफ़ेद चोगे से ढकी आकृति सामने है—गोरा रंग, सफ़ेद झाँईं मारती भूरी दाढ़ी, नीली आँखें-बाँहें खोल गले लगाने को आतुर। इतनी ममता, इतना अपनत्व इस साधु में अपने हर एक प्रियजन के लिए उमड़ता रहता था। मैं पैंतीस साल से इसका साक्षी था। तब भी जब वह इलाहाबाद में थे और तब भी जब वह दिल्ली आते थे। आज उन बाँहों का दबाब मैं अपनी छाती पर महसूस करता हूँ।

फ़ादर को याद करना एक उदास शांत संगीत को सुनने जैसा है। उनको देखना करुणा के निर्मल जल में स्नान करने जैसा था और उनसे बात करना कर्म के संकल्प से भरना था। मुझे 'परिमल' के वे दिन याद आते हैं जब हम सब एक पारिवारिक रिश्ते में बँधे जैसे थे जिसके बड़े फ़ादर बुल्के थे। हमारे हँसी-मज़ाक में वह निर्लिप्त शामिल रहते, हमारी गोष्ठियों में वह गंभीर बहस करते, हमारी रचनाओं पर बेबाक राय और सुझाव देते और हमारे घरों के किसी भी उत्सव और संस्कार में वह बड़े भाई और पुरोहित जैसे खड़े हो हमें अपने आशीषों से भर देते। मुझे अपना बच्चा और फ़ादर का उसके मुख में पहली बार अन्न डालना याद आता है और नीली आँखों की चमक में तैरता वात्सल्य भी—जैसे किसी ऊँचाई पर देवदारु की छाया में खड़े हों।

कहाँ से शुरू करें! इलाहाबाद की सड़कों पर फ़ादर की साइकिल चलती दीख रही है। वह हमारे पास आकर रुकती है, मुसकराते हुए उतरते हैं, 'देखिए-देखिए मैंने उसे पढ़ लिया है और मैं कहना चाहता हूँ...' उनको क्रोध में कभी नहीं देखा, आवेश में देखा है और ममता तथा प्यार में लबालब छलकता महसूस किया है। अकसर उन्हें देखकर लगता कि बेल्ज़ियम में इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष में पहुँचकर उनके मन में संन्यासी बनने की इच्छा कैसे जाग गई जबकि घर भरा-पूरा था—दो भाई, एक बहिन, माँ, पिता सभी थे।

"आपको अपने देश की याद आती है?"

"मेरा देश तो अब भारत है।"

"मैं जन्मभूमि की पूछ रहा हूँ?"

"हाँ आती है। बहुत सुंदर है मेरी जन्मभूमि—रेम्सचैपल।"

"घर में किसी की याद?"

"माँ की याद आती है—बहुत याद आती है।"

फिर अकसर माँ की स्मृति में डूब जाते देखा है। उनकी माँ की चिट्ठियाँ अकसर उनके पास आती थीं। अपने अभिन्न मित्र डॉ. रघुवंश को वह उन चिट्ठियों को दिखाते थे। पिता और भाइयों के लिए बहुत लगाव मन में नहीं था। पिता व्यवसायी थे। एक भाई वहीं पादरी हो गया है। एक भाई काम करता है, उसका परिवार है। बहन सख्त और ज़िद्दी थी। बहुत देर से उसने शादी की। फ़ादर को एकाध बार उसकी शादी की चिंता व्यक्त करते उन दिनों देखा था। भारत में बस जाने के बाद दो या तीन बार अपने परिवार से मिलने भारत से बेल्ज़ियम गए थे।

"लेकिन मैं तो संन्यासी हूँ।"

"आप सब छोड़कर क्यों चले आए?"

"प्रभु की इच्छा थी।" वह बालकों की सी सरलता से मुसकराकर कहते, "माँ ने बचपन में ही घोषित कर दिया था कि लड़का हाथ से गया। और सचमुच इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष की पढ़ाई छोड़ फ़ादर बुल्के संन्यासी होने जब धर्म गुरु के पास गए और कहा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ तथा एक शर्त रखी (संन्यास लेते समय संन्यास चाहने वाला शर्त रख सकता है) कि मैं भारत जाऊँगा।"

"भारत जाने की बात क्यों उठी?"

"नहीं जानता, बस मन में यह था।"

उनकी शर्त मान ली गई और वह भारत आ गए। पहले 'जिसेट संघ' में दो साल पादरियों के बीच धर्माचार की पढ़ाई की। फिर 9-10 वर्ष दार्जिलिंग में पढ़ते

फ़ादर कामिल बुल्के

रहे। कलकत्ता (कोलकाता) से बी.ए. किया और फिर इलाहाबाद से एम.ए.। उन दिनों डॉ. धीरेंद्र वर्मा हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। शोधप्रबंध प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रहकर 1950 में पूरा किया–'रामकथा : उत्पत्ति और विकास।' 'परिमल' में उसके अध्याय पढ़े गए थे। फ़ादर ने मातरलिंक के प्रसिद्ध नाटक 'ब्लू बर्ड' का रूपांतर भी किया है 'नीलपंछी' के नाम से। बाद में वह सेंट जेवियर्स कॉलिज, राँची में हिंदी तथा संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष हो गए और यहीं उन्होंने अपना प्रसिद्ध अंग्रेज़ी-हिंदी कोश तैयार किया और बाइबिल का अनुवाद भी...और वहीं बीमार पड़े, पटना आए। दिल्ली आए और चले गए–47 वर्ष देश में रहकर और 73 वर्ष की ज़िंदगी जीकर।

फ़ादर बुल्के संकल्प से संन्यासी थे। कभी-कभी लगता है वह मन से संन्यासी नहीं थे। रिश्ता बनाते थे तो तोड़ते नहीं थे। दसियों साल बाद मिलने के बाद भी उसकी गंध महसूस होती थी। वह जब भी दिल्ली आते ज़रूर मिलते–खोजकर, समय निकालकर, गर्मी, सर्दी, बरसात झेलकर मिलते, चाहे दो मिनट के लिए ही सही। यह कौन संन्यासी करता है? उनकी चिंता हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की थी। हर मंच से इसकी तकलीफ़ बयान करते, इसके लिए अकाट्य तर्क देते। बस इसी एक सवाल पर उन्हें झुँझलाते देखा है और हिंदी वालों द्वारा ही हिंदी की उपेक्षा पर दुख करते उन्हें पाया है। घर-परिवार के बारे में, निजी दुख-तकलीफ़ के बारे में पूछना उनका स्वभाव था और बड़े से बड़े दुख में उनके मुख से सांत्वना के जादू भरे दो शब्द सुनना एक ऐसी रोशनी से भर देता था जो किसी गहरी तपस्या से जनमती है। 'हर मौत दिखाती है जीवन को नयी राह।' मुझे अपनी पत्नी और पुत्र की मृत्यु याद आ रही है और फ़ादर के शब्दों से झरती विरल शांति भी।

आज वह नहीं है। दिल्ली में बीमार रहे और पता नहीं चला। बाँहें खोलकर इस बार उन्होंने गले नहीं लगाया। जब देखा तब वे बाँहें दोनों हाथों की सूजी उँगलियों को उलझाए ताबूत में जिस्म पर पड़ी थीं। जो शांति बरसती थी वह चेहरे पर थिर थी। तरलता जम गई थी। वह 18 अगस्त 1982 की सुबह दस बजे का समय था। दिल्ली में कश्मीरी गेट के निकलसन कब्रगाह में उनका ताबूत एक छोटी-सी नीली गाड़ी में से उतारा गया। कुछ पादरी, रघुवंश जी का बेटा और उनके परिजन राजेश्वरसिंह उसे उतार रहे थे। फिर उसे उठाकर एक लंबी सँकरी, उदास पेड़ों की घनी छाँह वाली सड़क से कब्रगाह के आखिरी छोर तक ले जाया गया जहाँ धरती की गोद में सुलाने के लिए कब्र अवाक् मुँह खोले लेटी थी। ऊपर करील की घनी छाँह थी और चारों ओर कब्रें और तेज़ धूप के वृत्त। जैनेंद्र कुमार, विजयेंद्र स्नातक, अजित कुमार, डॉ. निर्मला जैन और मसीही समुदाय के लोग, पादरीगण, उनके बीच में गैरिक वसन पहने इलाहाबाद के प्रसिद्ध विज्ञान-शिक्षक डॉ. सत्यप्रकाश और डॉ. रघुवंश भी जो अकेले उस सँकरी सड़क की ठंडी उदासी में बहुत पहले से खामोश दुख की किन्हीं

अपरिचित आहटों से दबे हुए थे, सिमट आए थे कब्र के चारों तरफ़। फ़ादर की देह पहले कब्र के ऊपर लिटाई गई। मसीही विधि से अंतिम संस्कार शुरू हुआ। राँची के फ़ादर पास्कल तोयना के द्वारा। उन्होंने हिंदी में मसीही विधि से प्रार्थना की फिर संट जेवियर्स के रेक्टर फ़ादर पास्कल ने उनके जीवन और कर्म पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा, 'फ़ादर बुल्के धरती में जा रहे हैं। इस धरती से ऐसे रत्न और पैदा हों।' डॉ. सत्यप्रकाश ने भी अपनी श्रद्धांजलि में उनके अनुकरणीय जीवन को नमन किया। फिर देह कब्र में उतार दी गई...।

मैं नहीं जानता इस संन्यासी ने कभी सोचा था या नहीं कि उसकी मृत्यु पर कोई रोएगा। लेकिन उस क्षण रोने वालों की कमी नहीं थी। (नम आँखों को गिनना स्याही फैलाना है।)

इस तरह हमारे बीच से वह चला गया जो हममें से सबसे अधिक छायादार फल-फूल गंध से भरा और सबसे अलग, सबका होकर, सबसे ऊँचाई पर, मानवीय करुणा की दिव्य चमक में लहलहाता खड़ा था। जिसकी स्मृति हम सबके मन में जो उनके निकट थे किसी यज्ञ की पवित्र आग की आँच की तरह आजीवन बनी रहेगी। मैं उस पवित्र ज्योति की याद में श्रद्धानत हूँ।

प्रश्न-अभ्यास

1. फ़ादर की उपस्थिति देवदार की छाया जैसी क्यों लगती थी?
2. फ़ादर बुल्के भारतीय संस्कृति के एक अभिन्न अंग हैं, किस आधार पर ऐसा कहा गया है?
3. पाठ में आए उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे फ़ादर बुल्के का हिंदी प्रेम प्रकट होता है?
4. इस पाठ के आधार पर फ़ादर कामिल बुल्के की जो छवि उभरती है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
5. लेखक ने फ़ादर बुल्के को 'मानवीय करुणा की दिव्य चमक' क्यों कहा है?
6. फ़ादर बुल्के ने संन्यासी की परंपरागत छवि से अलग एक नयी छवि प्रस्तुत की है, कैसे?
7. आशय स्पष्ट कीजिए–

   (क) नम आँखों को गिनना स्याही फैलाना है।

   (ख) फ़ादर को याद करना एक उदास शांत संगीत को सुनने जैसा है।

रचना और अभिव्यक्ति

8. आपके विचार से बुल्के ने भारत आने का मन क्यों बनाया होगा?
9. 'बहुत सुंदर है मेरी जन्मभूमि—रेम्सचैपल।'—इस पंक्ति में फ़ादर बुल्के की अपनी जन्मभूमि के प्रति कौन-सी भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं? आप अपनी जन्मभूमि के बारे में क्या सोचते हैं?

भाषा-अध्ययन

10. **मेरा देश भारत** विषय पर 200 शब्दों का निबंध लिखिए।
11. आपका मित्र हडसन एंड्री ऑस्ट्रेलिया में रहता है। उसे इस बार की गर्मी की छुट्टियों के दौरान भारत के पर्वतीय प्रदेशों के भ्रमण हेतु निमंत्रित करते हुए पत्र लिखिए।
12. निम्नलिखित वाक्यों में समुच्यबोधक छाँटकर अलग लिखिए—

(क) तब भी जब वह इलाहाबाद में थे और तब भी जब वह दिल्ली आते थे।

(ख) माँ ने बचपन में ही घोषित कर दिया था कि लड़का हाथ से गया।

(ग) वे रिश्ता बनाते थे तो तोड़ते नहीं थे।

(घ) उनके मुख से सांत्वना के जादू भरे दो शब्द सुनना एक ऐसी रोशनी से भर देता था जो किसी गहरी तपस्या से जनमती है।

(ङ) पिता और भाइयों के लिए बहुत लगाव मन में नहीं था लेकिन वो स्मृति में अकसर डूब जाते।

पाठेतर सक्रियता

- फ़ादर बुल्के का 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' उनकी एक महत्त्वपूर्ण देन है। इस कोश को देखिए-समझिए।
- फ़ादर बुल्के की तरह ऐसी अनेक विभूतियाँ हुई हैं जिनकी जन्मभूमि अन्यत्र थी लेकिन कर्मभूमि के रूप में उन्होंने भारत को चुना। ऐसे अन्य व्यक्तियों के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए।
- कुछ ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं जिनकी जन्मभूमि भारत है लेकिन उन्होंने अपनी कर्मभूमि किसी और देश को बनाया है, उनके बारे में भी पता लगाइए।
- एक अन्य पहलू यह भी है कि पश्चिम की चकाचौंध से आकर्षित होकर अनेक भारतीय विदेशों की ओर उन्मुख हो रहे हैं—इस पर अपने विचार लिखिए।

शब्द-संपदा

ज़हरबाद — गैंग्रीन, एक तरह का ज़हरीला और कष्ट साध्य फोड़ा
आस्था — विश्वास, श्रद्धा
देहरी — दहलीज़
पादरी — ईसाई धर्म का पुरोहित या आचार्य
आतुर — अधीर, उत्सुक

निर्लिप्त	–	आसक्ति रहित, जो लिप्त न हो
आवेश	–	जोश
लबालब	–	भरा हुआ
धर्माचार	–	धर्म का पालन या आचरण
रूपांतर	–	किसी वस्तु का बदला हुआ रूप
अकाट्य	–	जो कट न सके, जो बात काटी न जा सके
विरल	–	कम मिलने वाली
ताबूत	–	शव या मुरदा ले जाने वाला संदूक या बक्सा
करील	–	झाड़ी के रूप में उगने वाला एक कँटीला और बिना पत्ते का पौधा
गैरिक वसन	–	साधुओं द्वारा धारण किए जाने वाले गेरुए वस्त्र
श्रद्धानत	–	प्रेम और भक्तियुक्त पूज्यभाव

यह भी जानें

परिमल–निराला के प्रसिद्ध काव्य संकलन से प्रेरणा लेते हुए 10 दिसम्बर 1944 को प्रयाग विश्वविद्यालय के साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले कुछ उत्साही युवक मित्रों द्वारा परिमल समूह की स्थापना की गई। 'परिमल' द्वारा अखिल भारतीय स्तर की गोष्ठियाँ आयोजित की जाती थीं जिनमें कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक आदि पर खुली आलोचना और उन्मुक्त बहस की जाती। परिमल का कार्यक्षेत्र इलाहाबाद था, जौनपुर, मुंबई, मथुरा, पटना, कटनी में भी इसकी शाखाएँ रहीं। परिमल ने इलाहाबाद में साहित्य-चिंतन के प्रति नए दृष्टिकोण का न केवल निर्माण किया बल्कि शहर के वातावरण को एक साहित्यिक संस्कार देने का प्रयास भी किया।

फ़ादर कामिल बुल्के (1909-1982)
शिक्षा–एम.ए., पीएच.डी. (हिंदी)
प्रमुख कृतियाँ–रामकथा : उत्पत्ति और विकास, रामकथा और तुलसीदास, मानस-कौमुदी, ईसा-जीवन और दर्शन, अंग्रेज़ी-हिंदी कोश
1974 में पद्मभूषण से सम्मानित